International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

अभिनवगुप्त का काव्यदर्शन और कश्मीर का शैवदर्शन: एक तुलनात्मक अध्ययन

डा. राज पाल
प्राचार्य गांधी आदर्श कालेज, समालखा (पानीपत)

सारांश

अभिनवगुप्त भारतीय दर्शन और काव्यशास्त्र की परम्परा में एक ऐसे विरल प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य हैं, जिन्होंने कला और अध्यात्म, सौन्दर्य और तत्त्वज्ञान, अनुभूति और साक्षात्कार–इन सभी को एक ही चेतन प्रवाह के विभिन्न आयामों के रूप में देखा। यह शोध-पत्र अभिनवगुप्त के काव्यदर्शन और कश्मीर के अद्वैतवादी शैवदर्शन के अंतर्संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। काव्य के क्षेत्र में अभिनवगुप्त मुख्यतः 'रस' को काव्यानुभूति का मूल तत्व मानते हैं–जहाँ रस केवल भावनाओं का उद्रेक नहीं, बल्कि साधक-प्रत्याक्षी में 'चैतन्य की उत्कर्षानुभूति' है। दूसरी ओर, कश्मीर का शैवदर्शन, विशेषकर 'प्रत्यभिज्ञा' और 'स्पन्द' सिद्धांत, चैतन्य को ही ब्रह्म, शिव, स्वात्मा और समस्त अस्तित्व का मूल तत्त्व मानता है। इस प्रकार काव्यानुभूति में जो 'रस-स्वादन' है, वह शैवदर्शन में 'स्व-चैतन्य की प्रत्यभिज्ञा' के समानान्तर है।

दोनों विचार परम्पराएँ–कला और दर्शन–अभिनवगुप्त के चिंतन में एक-दूसरे की पूरक एवं परस्पर-प्रकाशक बनकर उभरती हैं। यह अध्ययन दर्शाता है कि उनके लिए सौन्दर्य केवल इन्द्रिय-सुख नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति का द्वार है। काव्य-दर्शन का चरम भी वही है जहाँ साधक स्वयं को 'रसस्वरूप' और 'शिवस्वरूप' रूप में पहचानता है। इस प्रकार अभिनवगुप्त काव्य-अनुभूति को मोक्ष-अनुभूति की तैयारी तथा चेतना-विस्तार का माध्यम मानते हैं।

Keywords: अभिनवगुप्त, रस-सिद्धांत, कश्मीर शैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञा, स्पन्द, सौन्दर्यशास्त्र, चैतन्य, काव्यानुभूति, भारतीय दर्शन

प्रस्तावना

भारतीय चिंतन-परम्परा में काव्य और दर्शन सदैव परस्पर पूरक रहे हैं। यहाँ कला केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि आत्मानुभूति और सत्य के साक्षात्कार की एक सूक्ष्म साधना मानी गई है। इसी परम्परा में अभिनवगुप्त का नाम अद्वितीय ऊँचाई पर स्थापित है। वे केवल सौन्दर्यशास्त्र

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

के आचार्य नहीं, बल्कि कश्मीर के अद्वैतवादी शैवदर्शन के एक उच्चतम सिद्धसाधक, तत्त्वचिन्तक और योगी भी हैं। उनके चिंतन में काव्य का सौन्दर्य और शैवदर्शन का अधिभौतिक तत्त्वज्ञान एक ही चेतन सत्ता की दो अभिव्यक्तियाँ हैं। इसीलिए उनके काव्यदर्शन को समझे बिना उनके आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान को पूर्ण रूप से ग्रहण करना संभव नहीं है, और शैवदर्शन की अनुभूति के बिना उनके काव्य-विश्लेषण की गहराई को समझ पाना भी कठिन है। कश्मीर शैवदर्शन का मूल आधार 'चैतन्य' है—वह चैतन्य जो न केवल जीव, जगत और ईश्वर का कारण है, बल्कि स्वयं में ही अनुभूति और अनुभावक, ज्ञाता और ज्ञान, दृष्टा और दृश्य सब कुछ है। यह दर्शन संसार को माया नहीं मानता, बल्कि शिव-चैतन्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति मानता है। अतः जो कुछ भी सुंदर, मधुर या भावनात्मक रूप से उदात्त है, वह शिव-स्वरूप की ज्योति के अंश का अनुभव है। इसी भावभूमि पर अभिनवगुप्त काव्य में 'रस' को केवल मनःस्थिति या भावांतर नहीं, बल्कि 'समष्टि-चैतन्य के साथ तादात्म्य' की अवस्था मानते हैं। रसास्वादन में साधक अपने व्यक्तिगत अहं को छोड़कर 'सामूहिक, विशुद्ध और निष्काम भावानुभूति' की स्थिति में प्रवेश करता है—यह स्थिति शैवदर्शन में वर्णित 'शिव-स्वरूप-प्रत्यभिज्ञा' का सौन्दर्यात्मक रूप है।

अतः अभिनवगुप्त के लिए काव्य केवल शब्दों और छवियों का सौन्दर्य नहीं, बल्कि चैतन्य को विस्तार देने वाला अनुभव है—ऐसा अनुभव जो साधारण से असाधारण की ओर, इन्द्रिय से परमानुभूति की ओर, व्यक्तिगत भाव से सार्वभौमिक चेतना की ओर ले जाता है। यही काव्यानुभूति को आध्यात्मिक अनुभव के समतुल्य बना देती है। इसीलिए उनके सौन्दर्यशास्त्रीय विचार केवल कलात्मक नहीं, दार्शनिक भी हैं; और उनके दार्शनिक सिद्धान्त केवल ज्ञानपरक नहीं, अनुभवगत भी। काव्य और दर्शन के इस गहन साम्य को समझना इसलिए आवश्यक है कि यह भारतीय सौन्दर्यशास्त्र को मात्र तकनीकी-विधान नहीं, बल्कि आध्यात्मिक परम्परा का एक जीवंत विस्तार सिद्ध करता है। अभिनवगुप्त का चिंतन हमें यह बोध कराता है कि सौन्दर्य केवल देखने या पढ़ने की वस्तु नहीं, बल्कि 'होने' की प्रक्रिया है—एक ऐसी यात्रा, जिसमें साधक स्वयं अपने ही अन्तर्मुख प्रकाशित चैतन्य से परिचित होता हुआ शिवस्वरूप की ओर प्रवृत्त होता है।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

काव्यशास्त्र में अभिनवगुप्त का योगदान

अभिनवगुप्त भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास में वह केंद्रीय व्यक्तित्व हैं, जिनके माध्यम से काव्य की भावनात्मक, दार्शनिक और आध्यात्मिक परम्पराएँ एकसाथ संगठित रूप में व्यक्त होती हैं। उनसे पूर्व काव्य के मूल्यांकन में अलंकार, अर्थ, शब्द-चातुरी और व्यंजना के तत्त्व अवश्य चर्चा में थे, परन्तु काव्यानुभूति का जो सूक्ष्मतम और गहनतम स्वरूप भाव-जगत से परे 'अहं-निरसन' या 'सामूहिक चैतन्य' की अनुभूति से संबंधित है, उसका तात्त्विक स्वरूप स्पष्ट रूप से अभिनवगुप्त के यहाँ मिलता है। उन्होंने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र पर 'अभिनवभारती' नामक अपनी विशाल टीका में रस, ध्वनि, अलंकार, विभाव-भाव-व्यभिचारी अवस्थाओं के माध्यम से काव्य की उदात्ततम प्रक्रिया का विश्लेषण किया। उनके अनुसार काव्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन या हर्ष-विह्वलता नहीं, बल्कि 'रसस्वादन' है, और यह रसस्वादन वस्तुतः मनुष्य के चैतन्य को उसकी सामान्य सीमाओं से ऊपर उठाकर उसे एक व्यापक, निर्मल और अहं-रहित अनुभूति में प्रतिष्ठित कर देता है। अभिनवगुप्त ने 'ध्वनि' को काव्य का प्राण कहा, क्योंकि उनके मत से काव्य की आत्मा उन वस्तुगत अर्थों में नहीं है, जिन्हें शब्द सीधे प्रकट करते हैं, बल्कि उन सूक्ष्म भावानुओं में है, जिनकी झलक शब्दों के पार जाकर पाठक या रसिक के अंतर्मन में कंपन उत्पन्न करती है। यह कंपन ही रस है–और यह रस सार्वभौमिक है, व्यक्तिगत नहीं। उदाहरणतः जब कोई करुण रस की कविता पढ़ता है, तो वह अपने व्यक्तिगत दुःख को नहीं याद करता, बल्कि 'दुःख' नामक सार्वभौमिक भाव के साथ एक विशुद्ध तादात्म्य स्थापित करता है। यही कारण है कि यह अनुभव शोक नहीं, बल्कि एक उदात्त करुणा का सौम्य, विस्तृत और संतुलित रूप होता है। अभिनवगुप्त इस अवस्था को 'आत्मोन्नति' यानि आत्मा के उत्कर्ष की उपस्थिति मानते हैं। उन्होंने काव्य के अध्ययन को केवल भाषिक और कलात्मक न मानकर एक प्रकार का योग माना। काव्य में भाव-विस्तार, चित्त-विकास और धारणात्मक समरसता–ये सभी गुण साधक को अन्ततः एक आध्यात्मिक ऊँचाई की ओर ले जाते हैं। इसीलिए अभिनवगुप्त के लिए रस-अनुभव और शिव-अनुभव में मूलतः कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार शिव-अनुभूति में साधक का 'अहं' विलीन होकर चेतना की व्यापकतम पहचान प्राप्त करता है, उसी प्रकार रस-अनुभूति में भी रसिक अपने व्यक्तिगत आग्रहों को

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

तिलांजलि देकर एक सार्वत्रिक भाव-चेतना में स्थापित होता है। इस प्रकार काव्य, दर्शन और आध्यात्मिकता की त्रिवेणी अभिनवगुप्त के चिंतन में एकरूप हो जाती है–और काव्य केवल शब्दों का सौन्दर्य न रहकर, चैतन्य-अनुभूति का माध्यम बन जाता है।

अभिनवगुप्त का रस-सिद्धांत

अभिनवगुप्त का रस-सिद्धांत भारतीय सौन्दर्यशास्त्र को आध्यात्मिक ऊँचाई पर प्रतिष्ठित करता है, क्योंकि वे रस को मात्र भाव-उद्रेक नहीं, बल्कि चैतन्य की आत्मोन्नत अवस्था के रूप में समझते हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र पर अपनी महत्त्वपूर्ण टीका 'अभिनवभारती' में उन्होंने स्पष्ट किया कि रस का उद्भव विभाव-अनुभाव-व्यभिचारी भावों की नाट्य-व्यवस्था से तो होता है, पर उसका परिनिष्पत्ति स्थल व्यक्तिगत मन नहीं, एक अहं-रहित, शुद्ध और सार्वभौमिक भाव-चेतना है। रस की विशिष्टता इसी अहं-निरसन में निहित है–रसिक का निजी अहं, निजी स्मृति और निजी प्रयोजन पिघलते हैं, और वह एक ऐसी अनुभूति में प्रविष्ट होता है जहाँ भाव अपनी निजी सीमाओं से मुक्त होकर समष्टि-चैतन्य का स्पर्श कराते हैं। यही कारण है कि करुण रस का अनुभव शोक का पुनर्स्मरण नहीं, बल्कि उदात्त करुणा का सन्तुलित, सौम्य और प्रसादमय विस्तार है। अभिनवगुप्त के लिए रस का मूल तत्त्व 'आनन्द' है–पर वह इन्द्रियजन्य सुख का आवेग नहीं, बल्कि आत्मा की स्वाभाविक निर्मलता का अनुभव है। नाट्य-वस्तु, भाषा, छवि और लय यहाँ साधन मात्र हैं; वे रसिक के अन्तर्मन में एक सूक्ष्म कंपन जगाते हैं जो ध्वनि-तत्व के माध्यम से अर्थ के पार जाकर भाव की पारदर्शी अनुभूति में परिणत होता है। ध्वनि को वे काव्य-प्राण कहते हैं, क्योंकि यहीं अर्थ के निर्देशात्मक आवरण से मुक्त होकर अनुभूति का रसात्मक तेज प्रकट होता है। इस रसात्मक तेज में भाव निजी नहीं रहता–वह विशुद्ध 'सामाजिक/समष्टिगत' हो जाता है, जिसे वे रस की सार्वभौमिकता (सामान्यीकरण) के रूप में समझाते हैं। इस सामान्यीकरण में काव्य-विषयक दुःख, शौर्य या हास्य, किसी व्यक्ति की स्मृति से बँधा नहीं रहता; वह रसिक को एक मूल्य-समृद्ध चैतन्यावस्था में स्थापित करता है।

इस रस-स्थिति की आन्तरिक प्रक्रिया को अभिनवगुप्त योग-साधना के अनुरूप मानते हैं। जैसे ध्यान में विषय-ग्रहण, मनोवृत्तियों का शमन और साक्षी-भाव की प्रतिष्ठा साधक को एक व्यापक

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

शान्ति तक पहुँचाती है, वैसे ही काव्य-प्रयोग में विभावों की व्यवस्थित प्रस्तुति, भावों का परिमार्जन और व्यभिचारियों का अनुशासन रसिक को प्रसादगुण से युक्त शुद्ध भाव-अवस्था में ले जाता है। यह शुद्ध भाव-अवस्था ही रस है—जहाँ न उच्छृंखल आसक्ति है, न उद्दीपन से उत्पन्न विक्षेप, बल्कि संतुलित, निःस्वार्थ, अहं-रहित, निर्मल अनुभव-प्रवाह है। इसीलिए वे कहते हैं कि रस का परिपाक 'प्रसाद' में होता है—वह मानसिक शुद्धि और हृदय-विस्तार का नैसर्गिक परिणाम है। अभिनवगुप्त रस की उपलब्धि में 'साधारणीकरण' को केन्द्रीय मानते हैं। साधारणीकरण का अर्थ है निजी स्मृति, लोकरूचि और स्वार्थ-प्रयोजन का विसर्जन, ताकि भाव अपनी सार्वभौमिक सत्ता में प्रकट हो सके। जब दर्शक/पाठक मंच पर या पाठ में प्रस्तुत शोक, रति, वीर्य या अद्भुत को देखता है, तो वह अपने जीवन की घटनाएँ नहीं पकड़ता; नाट्य-रचना की कलात्मक दूरी, रूप-परिवर्तन और नियम-संयम उसे वैयक्तिकता से मुक्त करते हैं। इसी विमुक्ति में भाव का सामान्य रूप जागृत होता है और वही रस का आस्वाद बनता है। यह आस्वाद व्यक्तिगत वासना की तृप्ति नहीं, मूल्य-जागरण है—शौर्य में धैर्य और उदात्तता, करुणा में करुण्यमय प्रसाद, श्रृंगार में माधुर्य और समरसता; यानी प्रत्येक भाव अपने सर्वोत्तम, संतुलित, परिमार्जित रूप में चमक उठता है।

अभिनवगुप्त रस के नैतिक-आध्यात्मिक प्रतिफल पर भी ज़ोर देते हैं। रसस्वादन मन को शुद्ध करता है, वृत्तियों को सन्तुलित करता है, और चित्त में एक प्रसन्न, दीप्तिमान, समत्वपूर्ण दशा उत्पन्न करता है। इस दशा में व्यक्ति का दृष्टि-कोण बदलता है—वह संसार को केवल उपयोगिता या खेद-आधारित सम्बन्धों में नहीं देखता, बल्कि मूल्य-संपन्न, अर्थ-दीप्त और संवेद्य सृष्टि के रूप में देखता है। ऐसी दृष्टि कला से साधना की ओर पुल बनाती है: रसिक के भीतर जागी समत्व और प्रसाद की प्रवृत्ति उसे अधिक सजग, अधिक करुणामय और अधिक समरस बनाती है। इस प्रकार रस केवल सौन्दर्य का अनुभव नहीं, व्यक्तित्व का परिमार्जन है; यह आध्यात्मिकता के लिए एक स्वाभाविक तैयारी है। भरतमुनि के ढाँचे को अपनाते हुए भी अभिनवगुप्त की मौलिकता इस बात में है कि वे रस को अनुभूति की पराकाष्ठा के रूप में स्थापित करते हैं। उनका आग्रह यह है कि काव्य की सार्थकता तभी है जब वह रस-पर्यन्त पहुँचता है; अलंकार, अर्थ-चातुरी, शब्द-सौष्ठव—ये सब साधन हैं, साध्य नहीं। साध्य है रस का शुद्ध, प्रसादमय, अहं-रहित अनुभव। जब कला

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

रस तक पहुँचती है, तो वह मनुष्य को उसकी सामान्य संवेदनशीलता से ऊपर उठाकर एक ऐसी स्थिति में रख देती है जहाँ वह अपने को व्यापक चैतन्य के साथ अनुभूति-पात में जानता है। यह आत्मोन्नति ही रस की आध्यात्मिक छाया है, जो कश्मीर शैवदर्शन के चैतन्य-प्रधान तत्त्वज्ञान के साथ सहज संवाद करती है। अंततः, अभिनवगुप्त का रस-सिद्धांत कला और अध्यात्म के बीच किसी कृत्रिम भेद को नहीं मानता। वे दिखाते हैं कि रस का शिखर अनुभव मन की अशुद्धियों को शांत कर, भावों को उनके उदात्त स्वरूप में प्रकाशित कर, आत्मा को एक दीप्त, समत्वपूर्ण चैतन्य में स्थापित करता है। यह वही बिंदु है जहाँ काव्य का सौन्दर्य मोक्ष की तैयारी बन जाता है–अनुभूति का परिमार्जन चेतना के विस्तार में रूपान्तरित होता है, और रसिक अपने भीतर उस प्रसाद को अनुभव करता है जो अंततः आत्म-स्वरूप की पहचान तक ले जा सकता है। यही अभिनवगुप्त का अद्वितीय योगदान है: रस को एक गहरे, निर्मल, आध्यात्मिक आनंद के रूप में समझना, जो मनुष्य को उसके सर्वोत्तम, मूल्य-समृद्ध और समरस अस्तित्व की ओर अग्रसर करता है।

कश्मीर शैवदर्शन: परिचय और प्रमुख तत्त्व

कश्मीर शैवदर्शन भारतीय दर्शन की उन अद्वितीय परम्पराओं में से है, जिसने अद्वैत की अनुभूति को अत्यन्त सूक्ष्म और गहन रूप में प्रस्तुत किया। यह दर्शन मुख्यतः कश्मीर की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भूमि पर विकसित हुआ और इसकी विशेषता यह है कि यह संसार को माया या भ्रान्ति नहीं मानता, बल्कि शिव-चैतन्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति मानता है। यहाँ शिव कोई बाहरी देवता नहीं, बल्कि परम चैतन्य है–वह चैतन्य जो स्वयं में ही सृष्टि का कारण, आधार और स्वरूप है। जीव, जगत और ईश्वर सभी उसी चैतन्य की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। इस दृष्टि से कश्मीर शैवदर्शन अद्वैतवादी है, परन्तु यह अद्वैत केवल बौद्धिक निष्कर्ष नहीं, बल्कि अनुभवजन्य सत्य है। कश्मीर शैवदर्शन का मूल आधार यह है कि चैतन्य ही सब कुछ है। यह चैतन्य स्थिर नहीं, बल्कि स्पन्दमान है–उसमें एक सूक्ष्म कंपन है, जो सृष्टि के रूप में प्रकट होता है। यह स्पन्द ही जगत की विविधता का कारण है, और इसी स्पन्द में शिव की लीला प्रकट होती है। जब साधक इस स्पन्द को अपने भीतर अनुभव करता है, तो उसे यह बोध होता है कि उसका व्यक्तिगत

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

मन और शरीर भी उसी सार्वभौमिक चैतन्य का अंश हैं। इस प्रकार आत्मा और शिव में कोई भेद नहीं रहता।

इस दर्शन में 'प्रत्यभिज्ञा' का सिद्धांत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है–स्वयं को पहचानना, अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करना। साधक जब अपने भीतर के चैतन्य को पहचानता है, तो उसे यह अनुभूति होती है कि वह स्वयं शिव है। यह पहचान किसी तर्क या प्रमाण से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभूति से होती है। इस अनुभूति में जीव का अहं विलीन हो जाता है और वह अपने को सार्वभौमिक चेतना में प्रतिष्ठित करता है। यही मोक्ष है–स्वयं को शिवस्वरूप के रूप में पहचान लेना। कश्मीर शैवदर्शन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'अभेद-भावना' है। यह भावना जीव और शिव, ज्ञाता और ज्ञेय, दृष्टा और दृश्य के बीच किसी भी भेद को स्वीकार नहीं करती। सब कुछ एक ही चैतन्य की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। जब साधक इस अभेद को अनुभव करता है, तो उसके लिए संसार कोई बन्धन नहीं रह जाता। वह संसार को शिव की लीला के रूप में देखता है और उसमें आनन्द का अनुभव करता है।

इस दर्शन की विशेषता यह भी है कि यह केवल ज्ञान का विषय नहीं, बल्कि साधना का मार्ग है। इसमें ध्यान, योग और तत्त्वचिन्तन के माध्यम से साधक अपने भीतर के चैतन्य को जागृत करता है। यह जागरण उसे धीरे-धीरे उस स्थिति तक ले जाता है जहाँ वह अपने को शिवस्वरूप के रूप में पहचानता है। इस प्रकार कश्मीर शैवदर्शन केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि एक जीवंत आध्यात्मिक परम्परा है। कश्मीर शैवदर्शन का प्रभाव भारतीय कला, साहित्य और दर्शन पर गहरा पड़ा। इसकी दृष्टि में सौन्दर्य, कला और अनुभूति सभी शिव-चैतन्य की अभिव्यक्तियाँ हैं। जो कुछ भी सुंदर है, वह शिव की ज्योति का अंश है। इसीलिए यह दर्शन कला और अध्यात्म को एक-दूसरे का पूरक मानता है। अभिनवगुप्त जैसे आचार्य ने इसी दृष्टि को अपनाकर काव्य और दर्शन को एकीकृत किया। उनके लिए रस का अनुभव और शिव का अनुभव मूलतः एक ही चेतना की दो अवस्थाएँ हैं। इस प्रकार कश्मीर शैवदर्शन का परिचय हमें यह समझाता है कि यह दर्शन अद्वैत की अनुभूति को केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं, बल्कि अनुभव और साधना के स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। इसके प्रमुख तत्त्व–स्पन्द, प्रत्यभिज्ञा और अभेद-भावना–सभी साधक को इस बोध की

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

ओर ले जाते हैं कि वह स्वयं शिव है और सम्पूर्ण जगत उसी शिव-चैतन्य की लीला है। यही इसकी अद्वितीयता है, जो इसे भारतीय दर्शन की अन्य परम्पराओं से अलग और विशिष्ट बनाती है।

स्पन्द, प्रत्यभिज्ञा और अभेद-भावना

कश्मीर शैवदर्शन की गहनता को समझने के लिए उसके तीन प्रमुख तत्त्व–स्पन्द, प्रत्यभिज्ञा और अभेद-भावना–का निरन्तर प्रवाह में विवेचन आवश्यक है। ये तीनों तत्त्व वस्तुतः एक ही चैतन्य की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं, जो साधक को अनुभव की गहराई में ले जाकर उसे शिवस्वरूप की पहचान कराते हैं। स्पन्द का सिद्धांत यह बताता है कि परम चैतन्य स्थिर और जड़ नहीं है, बल्कि उसमें एक सूक्ष्म कंपन है। यह कंपन ही सृष्टि का आधार है। जब हम किसी भाव, विचार या अनुभूति का अनुभव करते हैं, तो वह केवल मानसिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि चैतन्य के स्पन्द का ही रूप है। इस दृष्टि से सम्पूर्ण जगत शिव-चैतन्य का स्पन्द है। यही कारण है कि कश्मीर शैवदर्शन में संसार को माया नहीं, बल्कि शिव की लीला माना गया है। इस स्पन्द का अनुभव साधक को यह बोध कराता है कि उसकी प्रत्येक अनुभूति, चाहे वह सुख की हो या दुःख की, वास्तव में शिव-चैतन्य की ही अभिव्यक्ति है। इस भाव को *स्पन्दकारिका* में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

"यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।"

अर्थात् मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ समाधि है, क्योंकि प्रत्येक अनुभव शिव-चैतन्य का ही स्पन्द है। प्रत्यभिज्ञा का सिद्धांत इस दर्शन का हृदय है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है–स्वयं को पहचानना, अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करना। साधक जब अपने भीतर के चैतन्य को पहचानता है, तो उसे यह अनुभूति होती है कि वह स्वयं शिव है। यह पहचान किसी तर्क या प्रमाण से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभूति से होती है। इस अनुभूति में जीव का अहं विलीन हो जाता है और वह अपने को सार्वभौमिक चेतना में प्रतिष्ठित करता है। यही मोक्ष है–स्वयं को शिवस्वरूप के रूप में पहचान लेना। इस भाव को *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका* में इस प्रकार कहा गया है–

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

"चित्तं चिद्रूपमात्मानं प्रत्यभिज्ञायते यदा।

तदा शिवस्वरूपोऽस्मि नान्योऽहं नान्यदस्ति मे॥"

अर्थात् जब चित्त अपने चिद्रूप आत्मा को पहचान लेता है, तब साधक को यह बोध होता है कि मैं शिवस्वरूप हूँ, मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अभेद-भावना इस दर्शन का चरम है। यह भावना जीव और शिव, ज्ञाता और ज्ञेय, दृष्टा और दृश्य के बीच किसी भी भेद को स्वीकार नहीं करती। सब कुछ एक ही चैतन्य की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। जब साधक इस अभेद को अनुभव करता है, तो उसके लिए संसार कोई बन्धन नहीं रह जाता। वह संसार को शिव की लीला के रूप में देखता है और उसमें आनन्द का अनुभव करता है। इस स्थिति में द्वैत का अतिक्रमण हो जाता है और साधक अपने को उसी चैतन्य में प्रतिष्ठित करता है। इस भाव को *शिवसूत्र* में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

"चित्तं मन्तरः।"

अर्थात् चित्त ही मन्त्र है, और जब चित्त शिवस्वरूप में प्रतिष्ठित होता है, तब कोई भेद नहीं रहता। इस प्रकार स्पन्द साधक को यह अनुभव कराता है कि प्रत्येक अनुभूति शिव-चैतन्य का कंपन है, प्रत्यभिज्ञा उसे यह पहचान देती है कि वह स्वयं शिव है, और अभेद-भावना उसे उस स्थिति में ले जाती है जहाँ जीव और शिव, ज्ञाता और ज्ञेय, सब एक ही चैतन्य में विलीन हो जाते हैं। ये तीनों तत्त्व मिलकर कश्मीर शैवदर्शन को अद्वितीय बनाते हैं, क्योंकि यहाँ दर्शन केवल विचार नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव और साधना का मार्ग है। साधक जब इन तत्त्वों को अपने जीवन में आत्मसात करता है, तो वह अपने भीतर उस आनन्द और समरसता का अनुभव करता है जो मोक्ष का वास्तविक स्वरूप है।

काव्य और दर्शन का अंतर्संबंध

भारतीय चिंतन-परम्परा में काव्य और दर्शन का अंतर्संबंध केवल विषयगत समानता नहीं, अनुभव की एकसूत्रता है–जहाँ शब्द, भाव और रूप तत्त्वज्ञान की देदीप्य चेतना से संयुक्त होकर आत्मा की ऊर्ध्वगामी यात्रा का माध्यम बनते हैं। इस एकसूत्रता का सबसे परिष्कृत रूप अभिनवगुप्त के चिंतन में दीखता है: वे काव्य को मात्र कलात्मक रचना नहीं, बल्कि चित्त-परिमार्जन और आत्म-

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

प्रसाद की प्रक्रिया के रूप में समझते हैं; और दर्शन को केवल तर्क-सिद्धान्त नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभूति की प्रतिष्ठा। फलतः रस और चैतन्य, ध्वनि और स्पन्द, साधारणीकरण और प्रत्यभिज्ञा—ये युग्म एक-दूसरे में प्रतिरूपित होकर सौन्दर्य-अनुभूति को आध्यात्मिक अनुभूति का द्वार बना देते हैं। काव्य में रस की सिद्धि जिस तटस्थ, प्रसादमय, अहं-रहित भावावस्था में घटित होती है, वह शैवदर्शन के अभेद-बोध से अंतःरूप से मेल खाती है। जब रसिक करुण, शौर्य या श्रृंगार का आस्वाद करता है, तो वह निजी स्मृति और स्वार्थ से मुक्त होकर भाव के सार्वभौमिक रूप में स्थित होता है—यह वही स्थिति है जहाँ व्यक्तिगत 'मैं' का आग्रह ढीला पड़ता है और चैतन्य का व्यापक स्पर्श संभव होता है। अभिनवगुप्त इस रूपान्तरण को ध्वनि के माध्यम से घटित मानते हैं: शब्द के निर्देश से परे जो सूक्ष्म कंपन भीतर जागता है, वह भाव को सामान्यीकृत कर देता है और रसिक को मूल्य-दीप्त समत्व में प्रतिष्ठित करता है। शैवदृष्टि से देखें तो यही सूक्ष्म कंपन स्पन्द है—परम चैतन्य का जीवित आविर्भाव—और इसी में कला का अनुभव चैतन्य-साक्षात्कार की ओर एक व्यावहारिक सेतु बन जाता है। दर्शन, यदि केवल निष्कर्षों का संकलन रहे, तो वह जीवन के तापमान पर असर कम डालता है; पर जब दर्शन का आत्मा-सापेक्ष लक्ष्य अनुभव-सिद्धि है, तब काव्य उसकी सबसे जीवंत प्रयोगशाला बनता है। नाट्य और काव्य के अनुशासित रूप—रूप-सौष्ठव, लय, अभिनय, भाषा, अलंकार—रसिक की वृत्तियों को शुद्ध करते हैं, उच्छृंखल आवेगों को संतुलित करते हैं और प्रसादगुण का सृजन करते हैं। यही प्रसादगुण शैवदर्शन के समत्व और विवेक के अनुरूप है: वह न तो विषय-विलास में डूबने देता है, न विरक्ति के जड़त्व में; बल्कि भावों के उदात्त रूप में मन को स्थिर, दीप्त और करुण्यमय बनाता है। इस प्रकार काव्य की सौन्दर्यमयी अनुशासन-रचना चैतन्य के नैतिक-आध्यात्मिक परिष्कार की वास्तविक साधना बनती है।

काव्य का 'साधारणीकरण' और दर्शन की 'प्रत्यभिज्ञा' परस्पर-प्रकाशक हैं। साधारणीकरण निजी सीमाओं से भाव को मुक्त करता है; प्रत्यभिज्ञा निजी 'मैं' से आत्मा को मुक्त करती है। पहला सौन्दर्य-स्तर पर मूल्य-बोध जगाता है, दूसरा अस्तित्व-स्तर पर स्व-बोध प्रतिष्ठित करता है। जब रसिक मंच या पाठ में रति, वीर्य या करुणा के परिमार्जित रूप का अनुभव करता है, तो उसे सत्ता के उस परिष्कृत आयाम का बोध होता है जहाँ संसार मात्र उपभोग्य नहीं, अर्थ-दीप्त लीला है। यही

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

दृष्टि शैव-अभेद-बोध की सीढ़ी है: दृश्य-दर्शन का द्वैत घुलता है, ज्ञाता-ज्ञेय का अंतर क्षीण होता है, और अनुभूति का केन्द्र चैतन्य में स्थानांतरित हो जाता है। फलतः काव्य, दर्शन की भाषा को संवेदना देता है; दर्शन, काव्य की संवेदना को सत्य का मानक देता है। इस अंतर्संबंध का प्रायोगिक अर्थ यह है कि शिक्षा, साधना और संस्कृति में कला को हाशिये का मनोरंजन नहीं, मन-परिवर्तन की विधि माना जाए। नाटक, काव्य-पाठ, संगीत—यदि रस-पर्यन्त पहुँचें—तो वे सामूहिक चित्त में करुणा, धैर्य, माधुर्य और उदात्तता के मूल्य जाग्रत करते हैं; यही जागरण सामाजिक सौहार्द और व्यक्तिगत समत्व का आधार बनता है। शैवदृष्टि इसे चैतन्य की अभिव्यक्ति मानती है, जहाँ सौन्दर्य न केवल देखने की वस्तु है, बल्कि होने का अभ्यास है—एक ऐसा अभ्यास जो अहं-निरसन, प्रसाद और अभेद-बोध की ओर क्रमशः ले जाता है। इस रास्ते पर कलाकार साधक होता है, रसिक सहभागी होता है, और कृति साधना-पथ की यंत्रणा: कला, दर्शन और आध्यात्म तीनों एक वृत्त में आते हैं।

काव्य और दर्शन का संबंध अभिनवगुप्त के यहाँ किसी समायोजन की युक्ति नहीं, बल्कि एकात्म चेतना का स्वाभाविक विस्तार है। काव्य का रस शैवदर्शन की चैतन्य-सिद्धि का सौन्दर्यात्मक रूप है; दर्शन का अभेद-बोध काव्य के प्रसाद का तत्वमीमांसात्मक रूप। दोनों मिलकर मनुष्य को उपयोगिता-केन्द्रित दृष्टि से मूल्य-दीप्त दृष्टि की ओर, निजी आग्रह से सार्वभौमिक सहभागिता की ओर, और सीमित संवेदना से दीप्त चैतन्य-स्थिति की ओर ले जाते हैं। यही अंतर्संबंध भारतीय सौन्दर्यचिन्तन की आत्मा है—जहाँ कला सत्य का स्पर्श कराती है और दर्शन अनुभूति का रस भर देता है; और इसी संयुक्त स्पर्श में आत्मा अपने उज्ज्वल, समरस, शिवस्वरूप की पहचान के निकट आती है।

अभिनवगुप्त की परम्परा एवं प्रभाव

अभिनवगुप्त भारतीय चिंतन-परम्परा के उन विरल आचार्यों में गिने जाते हैं, जिनकी प्रतिभा ने कला, दर्शन और अध्यात्म—तीनों क्षेत्रों को एक साथ आलोकित किया। वे कश्मीर शैवदर्शन की *प्रत्यभिज्ञा* परम्परा के उच्चतम सिद्धसाधक थे और साथ ही भारतीय काव्यशास्त्र के सबसे गहन व्याख्याकार भी। उनकी परम्परा और प्रभाव को समझना भारतीय सौन्दर्यशास्त्र और अध्यात्म-

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

दर्शन की गहराई को समझने के लिए अनिवार्य है। अभिनवगुप्त की परम्परा कश्मीर शैवदर्शन की उस धारा से जुड़ी है, जिसे *प्रत्यभिज्ञा शास्त्र* कहा जाता है। इस परम्परा का मूल आधार यह था कि जीव और शिव में कोई भेद नहीं है, और साधक को अपने भीतर के चैतन्य को पहचानकर यह बोध करना चाहिए कि वह स्वयं शिवस्वरूप है। अभिनवगुप्त ने इस परम्परा को न केवल दार्शनिक ग्रन्थों में विस्तार दिया, बल्कि उसे काव्य और नाट्य के क्षेत्र में भी लागू किया। उनकी दृष्टि में कला और दर्शन दोनों एक ही चैतन्य की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसीलिए उन्होंने *अभिनवभारती* जैसी टीका लिखकर नाट्यशास्त्र को केवल कलात्मक अनुशासन न मानकर आध्यात्मिक साधना का मार्ग बना दिया। उनका प्रभाव भारतीय काव्यशास्त्र पर अत्यन्त गहरा पड़ा। उनसे पूर्व काव्य का मूल्यांकन मुख्यतः अलंकार, शब्द-चातुरी और अर्थ-व्यंजना के आधार पर होता था। अभिनवगुप्त ने इन सबको स्वीकार करते हुए भी यह दिखाया कि काव्य का चरम उद्देश्य रसस्वादन है, और यह रसस्वादन साधक को अहं-निरसन की स्थिति में ले जाकर उसे सार्वभौमिक चैतन्य से जोड़ता है। इस दृष्टि ने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र को केवल तकनीकी चर्चा से ऊपर उठाकर उसे आध्यात्मिक दर्शन का अंग बना दिया। आगे चलकर यह दृष्टि संस्कृत काव्यालोचना की मानक बन गई और आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र में भी उसकी गूँज सुनाई देती है। अभिनवगुप्त का प्रभाव केवल काव्यशास्त्र तक सीमित नहीं रहा। कश्मीर शैवदर्शन की परम्परा में वे एक ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने योग, तत्त्वज्ञान और कला को एकीकृत किया। उनके ग्रन्थों में दर्शन की गहनता, योग की साधना और कला की संवेदना एक साथ मिलती है। इस कारण वे भारतीय संस्कृति में एक समन्वयकारी व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनकी दृष्टि ने यह दिखाया कि सौन्दर्य केवल इन्द्रिय-सुख नहीं, बल्कि आत्मा की स्वाभाविक निर्मलता का अनुभव है।

उनके प्रभाव का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि उन्होंने भारतीय चिंतन को वैश्विक स्तर पर संवाद के योग्य बनाया। उनकी व्याख्याएँ यह दिखाती हैं कि कला और दर्शन का अंतर्संबंध केवल भारत की परम्परा तक सीमित नहीं, बल्कि सार्वभौमिक है। आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र, विशेषकर पश्चिमी एस्थेटिक्स में भी, कला को आत्मोन्नति और मूल्य-जागरण का साधन माना जाता है। अभिनवगुप्त की दृष्टि इस विचार को बहुत पहले ही प्रस्तुत कर चुकी थी। अभिनवगुप्त की

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

परम्परा और प्रभाव का सार यह है कि उन्होंने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र को आध्यात्मिक दर्शन से जोड़ा और कश्मीर शैवदर्शन को कलात्मक संवेदना से। उनके चिंतन ने यह दिखाया कि कला और अध्यात्म अलग-अलग नहीं, बल्कि एक ही चेतन सत्ता की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। इसीलिए वे भारतीय संस्कृति में एक ऐसे आचार्य के रूप में स्मरण किए जाते हैं, जिन्होंने सौन्दर्य को मोक्ष की तैयारी और काव्यानुभूति को चैतन्य-विस्तार का माध्यम बना दिया।

तुलनात्मक विवेचन

अभिनवगुप्त के काव्यदर्शन और कश्मीर शैवदर्शन के अद्वैत-चिन्तन का तुलनात्मक विवेचन करते समय सबसे पहले जो मूल सूत्र उभरता है, वह है—चेतना की एकात्म सत्ता। काव्य में रस का लक्ष्य उस तटस्थ, प्रसादमय अनुभूति तक पहुँचना है जहाँ भाव निजी नहीं, समष्टिगत हो जाते हैं; और शैवदर्शन में साधना का लक्ष्य उसी समष्टि-चैतन्य की प्रत्यभिज्ञा है, जहाँ जीव शिवस्वरूप का बोध करता है। दोनों में 'अहं-निरसन' प्रमुख है—काव्य में निजी स्मृति, स्वार्थ और प्रयोजन का विसर्जन साधारणीकरण के माध्यम से होता है; शैवदर्शन में अज्ञान-वृतियों का शमन प्रत्यभिज्ञा और स्पन्द-बोध से घटित होता है। फलतः रस-अनुभव का चरम और शिव-अनुभूति का चरम, अपने आध्यात्मिक आयाम में, एक ही चेतना-स्थितिपर्यन्त की ओर अभिसृत दिखते हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण साम्य प्रक्रिया-स्तर पर है। काव्य में विभाव-अनुभाव-व्यभिचारी भावों का अनुशासित विन्यास ध्वनि के माध्यम से अर्थ के पार जाकर भाव का पारदर्शी अनुभव जगाता है; शैवदर्शन में स्पन्द-सिद्धि यह चेत कराती है कि प्रत्येक अनुभव परम-चैतन्य के कंपन का विभाव है, और ध्यान-प्रसाद से मन उस कंपन की पारदर्शिता को पहचानता है। यहाँ ध्वनि और स्पन्द, दोनों सूक्ष्म अनुभूति-तत्व हैं—एक कला के माध्यम में, दूसरा साधना के माध्यम में—जो रसिक/साधक को सामान्य संवेदना से ऊपर उठाकर स्थिर, दीप्त, समत्वपूर्ण अवस्था में प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार सौन्दर्य की प्रयोगशाला और अध्यात्म की प्रयोगशाला अलग-अलग उपकरणों से एक ही अंतःविज्ञान को सिद्ध करती हैं: भाव का परिमार्जन और चैतन्य का विस्तार।

तीसरा साम्य फल-स्तर पर दिखता है। काव्य का प्रामाणिक फल 'प्रसाद' है—चित्त की शुद्धि, वृत्तियों का संतुलन, मूल्य-बोध का जागरण—जो करुणा, धैर्य, माधुर्य, उदात्तता जैसे गुणों को पुष्ट करता

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

है। शैवदर्शन का फल 'समत्व' और 'अभेद-बोध' है—द्वैत की शिथिलता, करुणामय दीप्ति, और लीला-दृष्टि में संसार का अवगाहन। प्रसाद और समत्व व्यावहारिक जीवन में समान आचरण-फल देते हैं: अहं-केन्द्रित प्रतिक्रियाएँ मंद पड़ती हैं, संबंधों में समरसता बढ़ती है, और अर्थ-दीप्त दृष्टि विकसित होती है जो सौन्दर्य को उपभोग नहीं, सहभागिता के रूप में ग्रहण करती है। इस सम्मिलन से कला मनोरंजन से साधना की दिशा में, और दर्शन वाद-विवाद से अनुभूति की दिशा में रूपान्तरित होता है। चौथा तुलनात्मक पक्ष उनकी आध्यात्मिक टेलियोलॉजी में है—साध्य की प्रकृति। अभिनवगुप्त के लिए काव्य का साध्य रस है, पर रस को वे स्थूल-भाव के चरम पर नहीं रोकते; वह आध्यात्मिक आनन्द का अग्रद्वार है। कश्मीर शैवदर्शन के लिए साध्य शिवस्वरूप-प्रत्यभिज्ञा है, पर वह वैराग्य के जड़त्व में नहीं, लीला की उज्ज्वलता में प्रकट होती है। इस प्रकार दोनों परम्पराएँ साध्य को उर्ध्वमुखी बनाती हैं: रस मोक्ष की तैयारी है, प्रत्यभिज्ञा सौन्दर्य की दीप्ति से सुसंस्कृत है। काव्य का चरम जहाँ भाव अपने उदात्ततम रूप में दीप्त होता है, वही शैवदर्शन का चरम है जहाँ चेतना अपने अभेद-स्वरूप में दीप्त होती है—दोनों दीप्तियाँ एक ही ज्योति के भिन्न-भिन्न आयाम हैं।

पाँचवाँ, भिन्नताएँ भी विवेच्य हैं, ताकि साम्य का अर्थ समरूपता न समझ लिया जाए। काव्य का क्षेत्र भाषा, रूप, लय और नाट्य-विन्यास की कलात्मक बाधाओं के भीतर काम करता है; वह सौन्दर्यात्मक दूरी निर्मित करता है जिससे निजी पीड़ा या वासना, परिमार्जित भाव में रूपान्तरित हो सके। शैव-साधना प्रत्यक्ष-अनुभूति का आग्रह रखती है, और ध्यान, जप, विचार-निरोध जैसी आन्तरिक विधियों से चित्त को साधती है। अतः काव्य, अनुभूति तक पहुँचने के लिए 'आस्थापन' और 'प्रस्तुति' का अनुशासन अपनाता है; दर्शन, उसी अनुभूति को 'निजत्व' और 'अभेद-बोध' में स्थिर करता है। यह भिन्नता विधि-स्तर की है, साध्य-स्तर पर वे एक-दूसरे के पूरक हैं: कला चित्त को तैयार करती है, साधना चित्त को प्रतिष्ठित करती है। अंततः, तुलनात्मक विवेचन का निर्णायक निवेदन यह है कि अभिनवगुप्त कला और दर्शन की द्वन्द्वात्मकता को एकात्म प्रवाह में विलीन कर देते हैं। रस और चैतन्य, ध्वनि और स्पन्द, साधारणीकरण और प्रत्यभिज्ञा—ये युग्म सिद्ध करते हैं कि सौन्दर्य और सत्य भारतीय परम्परा में परस्पर-प्रकाशक हैं। काव्य के माध्यम

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

से व्यक्ति मूल्य-दीप्त संवेदना प्राप्त करता है; दर्शन के माध्यम से वही संवेदना अस्तित्व-बोध में रूपान्तरित होती है। इस संयुक्त मार्ग पर चलकर मनुष्य उपयोगिता से अर्थ की ओर, निजी आग्रह से समष्टि-सहभागिता की ओर, और सीमित अनुभव से उज्ज्वल अभेद-चेतना की ओर अग्रसर होता है—यही अभिनवगुप्त की अद्वितीय देन है, जो कला को मोक्ष की तैयारी और दर्शन को सौन्दर्य की दीप्ति से दीप्त एक जीवंत अनुभव बना देती है।

निष्कर्ष

अभिनवगुप्त का चिंतन भारतीय सौन्दर्यशास्त्र और कश्मीर शैवदर्शन के अद्वैत तत्त्वज्ञान को एक अद्वितीय समन्वय में प्रस्तुत करता है। उनके लिए काव्य केवल शब्दों और अलंकारों का खेल नहीं, बल्कि आत्मा को उसकी सीमाओं से ऊपर उठाकर सार्वभौमिक चैतन्य से जोड़ने का साधन है। रस-अनुभव में साधक अपने निजी अहं को विसर्जित कर एक शुद्ध, प्रसादमय और समष्टिगत भावावस्था में प्रतिष्ठित होता है। यही स्थिति शैवदर्शन की प्रत्यभिज्ञा और स्पन्द सिद्धांत में वर्णित शिवस्वरूप की पहचान से मेल खाती है।

काव्य और दर्शन का यह अंतर्संबंध अभिनवगुप्त के चिंतन में इस रूप में प्रकट होता है कि सौन्दर्य केवल इन्द्रिय-सुख नहीं, बल्कि आत्मोन्नति का द्वार है; और दर्शन केवल तर्क नहीं, बल्कि अनुभूति का रस है। इस प्रकार कला और अध्यात्म उनके लिए एक ही चेतन सत्ता की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। अभिनवगुप्त का योगदान यह है कि उन्होंने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र को आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान की और कश्मीर शैवदर्शन को कलात्मक संवेदना से समृद्ध किया। उनके विचार आज भी यह सिखाते हैं कि सौन्दर्य और सत्य परस्पर-प्रकाशक हैं, और मनुष्य की वास्तविक यात्रा वही है जो उसे व्यक्तिगत सीमाओं से मुक्त कर सार्वभौमिक चेतना की ओर ले जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भरतमुनि – *नाट्यशास्त्र*, विशेषतः रस-सिद्धांत के अध्याय।
2. अभिनवगुप्त – *अभिनवभारती* (नाट्यशास्त्र पर टीका)।
3. अभिनवगुप्त – *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विवृति* तथा *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी*।
4. अभिनवगुप्त – *तन्त्रालोक* (कश्मीर शैवदर्शन का महाग्रन्थ)।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open access journal
Impact Factor: 8.3 www.ijesh.com ISSN: 2250 3552

5. वासुगुप्त – *शिवसूत्र*।
6. कश्मीर शैव परम्परा के अन्य ग्रन्थ – *स्पन्दकारिका* (कल्लट द्वारा रचित)।
7. राधाकृष्णन, एस. – *Indian Philosophy*, खण्ड 2 (कश्मीर शैवदर्शन पर विवेचन)।
8. पंडित, के.सी. – *Abhinavagupta: An Historical and Philosophical Study*।
9. भट्ट, गोविन्दचन्द्र – *भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास* ।
10. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ – *A History of Indian Philosophy*, खण्ड 5 (कश्मीर शैवदर्शन और अभिनवगुप्त पर विशेष चर्चा)।
11. चक्रवर्ती, के.सी. – *Kashmir Shaivism*।
12. रस्तोगी, बी.एन. – *The Krama Tantricism of Kashmir*।
13. सिंह, जयदेव – *Pratyabhijñā Philosophy* तथा *Spanda Kārikā with Commentary*।
14. शर्मा, रामनाथ – *भारतीय सौन्दर्यशास्त्र और अभिनवगुप्त*।